सेज पर संस्कृत : धर्म की आड़ में पल रही अपसंस्कृति का कोरा चिट्ठा

डॉ. वृषाली सु. मांद्रेकर

लेखिका मधु काँकरिया ने 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में जैन धर्म और उससे जुड़ी मात्यताओं को तथा उसके समाज पर पड़े प्रभावों को सूक्ष्मता से कहने का दुस्साहस किया है। समाज के नामी लेखक इन कुरीतियों और उनमें पल रहे अन्धविश्वासों पर लिखने का साहस भी नहीं कर सकते हैं। जो कार्य मधु काँकरिया ने किया है वह काबिले तारीफ है।

'सेज पर संस्कृत' सिर्फ स्त्री विमार्श को केन्द्र में रखते हुए लिखा गया उपन्यास नहीं है वह समाज की आँखों में धूल झोंकते हुए धर्म का ठेका लेकर स्त्रियों को ठगने वाले जैन धर्मविलंबियों का पर्दाफाश करने वाला उपन्यास है "कितनी लज्जा की बात है कि मुट्ठीभर धर्मगुरू सारी दुनिया को मनमाने ढंग से भेड़ बकरी की तरह हाँक रहे हैं।" सीमित उद्देश्यों और देह के अँधेरों से घिरा यह साधु जीवन ईश्वर की असीमिता को छू नहीं सकता नी ही अपने 'स्व' को विराट में समाहित कर सकता है।

इस उपन्यास में यह भी अभिव्यक्त किया है कि स्त्री हमेशा कोमलमना रही है परंतु समय आने पर वह काली माँ का भी रूप धारण करती है और अभयमुनि जैसे साधुओं की काली करतूतों का भंडाफोड़ करते हुए उसे मारकर बदला भी ले सकती हे।

इस उपन्यास में धर्म के ठेकेदारों के आवास्तव आडम्बर का समूल उच्चारण करते हेतु प्रयत्नरत चरित्र संघमित्रा है जिसका मालविका बराबर साथ देती रही है। वह समाज की विभिन्न कुरीतियों, ढकोसलों को हमेशा से ही पैनी दृष्टि से अवलोकन करती रही है। ग्यारह वर्ष की छुटकी को साध्वी बनाने के लिए उसकी माँ प्रयत्नशील है तो संघमित्रा उसका विरोध करती हैं। वह कहती है कि इतनी सी छोटी छुटकी में कहाँ से इतनी समझ है कि वह जैन धर्म के तत्त्वों के अनुसार आचरण करें, उसका तो अभी तक आईस्क्रीम खाने के लिए, कॉमिक्स पढ़ने के लिए दिल ललचाता है, जब तक वह इस लालच, मोह और माया के बंधन से परे नहीं हटेगी तब तक इस आध्यात्मिक को वह कैसे अपनाएगी?

छुटकी की अम्मा तो दोनों पुत्रियों को समाज की गंदी नजरों से बचाने के लिए साध्वी बनाना चाहती है। अम्मा की सोच यह है कि वह धर्मरूपी चादर ओढ़ने से समाज में उसे और बच्चों

• सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

को उच्च स्थान मिलेगा। समाज की बुरी नजरों से वह उनको बचाकर उनको सम्मानपूर्वक जिंदगी दे पाएगी लेकिन संघनिया उसका विरोध करती है- जैसी मनसा वैसी दशा, आदमी डूबने की सोचेगा तो डूबेगा ही जिनके पास आशा है वही धनी है, उसी के पास सब कुछ है। वह माँ को समझाती है कि तुमने तो धर्म का लबादा डाल दो। बहुत बार बहस करने पर भी वह माँ को परावृत्त नहीं कर पाती। छुटकी के साथ स्वयं दीक्षा लेकर वह जैन धर्मविलंबियों के गिरफत में फँस जाती है।

संघमित्रा निर्भीक, विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत से कार्य करनेवाली, जीवन की घटनाओं पर बहुत ही गहराई से विचार-विमर्श करने वाली लड़की के रूप में दृष्टि गोचर होती है।

छुटकी को रोकने के लिए संघमित्रा लालच दिखाती है, उसे नया फ्राक खरीदकर देती है और साध्वी बनने ये रोकने के लिए प्रयास करती है लेकिन घर में आने के बाद देखती है कि ''कुछ लम्हों के लिए ही सही, छुटकी के भीतर जीवन की जो ललक जगाई थी संसार की खूबसूरत चीजों के प्रति जो आकर्षण जगाया, अम्मा उन पर पोंछा लगाने पर तुली हुई थी। छुटकी फिर हाथ में माला लिए प्रायश्चित पर बैठ गई थी सब देखकर संघमित्रा के भीतर एक नहीं कई कई ज्वालामुखी एक साथ फूट रहे थे.....आक्रोश, हताशा अपनी असफलता, छुटकी की भविष्यहीनता, माँ की मातृत्वहीनता, सबका ज्वालामुखी उस क्षण की लपट इतनी भयानक थी कि माँ से पंगा न लेने की सारी प्रतिज्ञाएं स्वाहा हो गई।''

इतना होने के बावजूद वह फिमिक्स पंछी की तरह दुबारा उठ खड़ी है। फिर से उसे रोकने के लिए प्रयत्न करती है- जब माँ समझाने पर भी इन स्थितियों की गंभीरता और भयावहता के समझ नहीं पाती तब वह आचार्य प्रमुख श्री जीवनासिद्धि को कई पत्र लिखती है और दीक्षा की अनुमति वापस लेने के लिए कहती है।

पर जब वह लालकोठी में पहुँचती है तो उसे यह सब कुछ निरर्थक जान पड़ता है। उसे लगता है कि यहाँ ''मध्ययुग का अँधेरा पसरा पड़ा है ये सब धड़ हैं, यहाँ मस्तिष्क सिर्फ एक है। वही सूत्रधार और निर्णायक है सबका। यहाँ अनुशासन के नाम पर हर मुमुक्षु के हाथों में ध र्म का एक पैकेज पकड़ा दिया जाता है और वही बनता है उसके मौक्ष का गेट पासे''

संघमित्रा पर हमेशा से ही पिता की विचारधारा का प्रभाव रहा है, जो उसे जीवनस्थितियों का सहीं आकलन करते हुए उसमें से राह निकालने के लिए मददगार साबित हुई है। जीवन सहज साधारण नहीं होता वह तो विपरीत स्थितियों का दस्तावेज होता है राह पर काँटे ही काँटे हैं, जिनमें से आगे बढ़ना बहुत मुश्किल है। पर इससे मुँह मोड़कर दीक्षा लेकर साध्वी बनने का पर्याय उसे स्वीकार नहीं है। इसीलिए जीवन की विपरीतावस्था में भी वह साध्वी न बनने के निर्णय पर अटल रहती है। जिंदगी के मोड़ पर उसके भाई, पिता, माँ और बहन का साथ छूटने पर भी वह धैर्य से अपनी जिंदगी में कार्यरत रहती है। मधु ने जैन धर्म एवं जीवन दर्शन पर करारा व्यंग्य करते हुए वास्तव में धर्म, एवं उससे जुड़े तत्त्वों की भी बड़ी मौलिक व्याख्या की है.... हमने धर्म का घेरा गहुत सीमित रखा है.... सिर्फ अपने आत्म उन्नयन और आत्ममुक्ति तक। आज धर्म इसीलिए पराजित है कि उसने अनन्त सामाजिकता को नकारकर अपने को अपने 'आत्म' तक ही सीमित

ISSN No. : 2347–9612

कर डाला है।..... आज के सन्दर्भ में धर्म की असली भूमिका यहीं हो सकती है....उसे जीवन और मानव सेवा से जोड़ना। उसे गांधी के अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचाना (192) लेकिन जैन ध र्मावालंबियों के लिए वह सिर्फ सेफटी वॉल्व बना है। महावीर की विराटता और विश्व-करूणा, प्रेम अहिंसा और अपरिग्रह के संदेशों पर कालिख पोती जा रही है। इन धर्म के ठेकेदारों ने प्रेम, कल्पना, स्वप्न और सृजन के सारे दरवाजे बन्द कर दिए है... व्यक्ति के अपने पुराने सन्दर्भ, पहचान और रिश्तों से काट दिया है और जीने का कोई उद्देश्य नहीं जिसमें कोई आस्था नहीं है, समाज सेवा के लिए प्रतिबद्ध मदर टेरेसा उनके अनुसार सन्त नहीं है क्योंकि वह आत्मसाध ना में लीन नहीं थी। लेखिका सवीकार करती है कि ..." धर्म की यह लड़ाई हमें लड़नी ही पड़ेगी क्योंकि आज विश्व के सभी धर्म गुरूओं ने धर्म की मनमाने ढंग से व्याख्या कर पुरी धरती को घृणा, द्वेष और हिंसा से लहुलुहान कर दिया है।" (85)

धर्म के रास्ते सही ढंग से चलते तो शायद आज तक हजारों साधु-साध्वियों में से कोई बुद्ध, विवेकानंद, महावीर तो निकलते। महावीर ने कभी भी संसार की छोटी-छोटी बातों में, कच्चा पानी, पक्का पानी, हरा सूखा बत्ती पंखा, नहाने-धोने, स्त्री-पुरूष आदि में ध्यान नहीं दिया था, उन्होंने तो जीवन में रोशनी भरने वाले जीवन को आगे बढ़ाने वाले धर्म में विश्वास रखा था। उन्होंने इतने बड़े विराट धर्म में कीड़ों मकोड़ों को समर्पित नहीं किया था, यह सब चीजें उनके चेले चपाटों ने उनके नाम गढ़कर बना बनाया पैकेज थमा दिया है कि धर्म की दुकान चलती रहे।

'इदन्नमम' की मंदाकिनी की तरह संघमित्रा खुद की लड़ाई खुद लड़ना चाहती है। जिस तरह मन्दा का जीवन, उसकी ऊर्जा शक्ति सिर्फ दूसरों के लिए थी उसी प्रकार संघमित्रा भी अपनी सारी शक्तियाँ दूसरों के लिए ही समर्पित करती है। जिस भू भाग में नारी शोषण एवं बलात्कार करने की वस्तु मानी जाती है वहाँ नारी संगठन केन्द्र को चलाकर उसका नेतृत्व करते हुए परिवर्तन करना चाहती है। इदन्नमम, चाक या सेज पर संस्कृत हो तीनों में नारी शोषण अन्याय, अत्याचार के खिलाफ संघर्षरत है। वह प्रतिरोध करने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। संघमित्रा सही सोच के कारण ही ऑफिस में फाइल्स थमाते हुए मैनेजर द्वारा गलत वर्तन करने पर वह नौकरी त्याग देती है। छोटा-सा-मकान कभी धोखे और तिकड़म से दादा ने हथिया लिया था उसको नैतिक जिम्मेदारी के तहत लौटा देती है। छुटकी पर बलात्कार करने वाले अभयमुनि को एकान्त में बुलाकरर उसे कहती है कि 'एक धर्म गुरू होकर तुमने ऐसा किया इसलिए तुम्हारा अपराध अक्षम्य है मुनि। जो धोखा, जिल्लत और अकथनीय आँसू तुमने दूसरों को दिए, देखो कैसे लौटकर वे आते हैं तुम्हारे पाप। तुम धरती के धब्बे, पृथ्वी की गन्दगी....देखो, कैसे मिटाती हूँ मैं तुम्हें (226) और प्रतिहिंसा की एक लपट बनकर उसका खून करती है और थाने में जाकर आत्मसमर्पण करती है। स्वयं को भागकर बचा सकती थी पर वह इस तरह के कुकर्मों का पर्दाफाश करना चाहती थी- यह सत्य उसके प्राणों से भी ज्यादा मूल्यवान था इस धार्मिक मस्तिष्क में आदमी को हिंसक जानवर में तब्दील कर दिया है, अनेकों पीढ़ियों को गुमराह किया है। इसलिए इस तरह कदम उठाकर ध रती के धब्बों को वह मिटाना चाहती थी।

बहुत ही स्पष्ट एवं निर्भीक है मधु कांकरिया क्रांति कुमान जैन के शब्दों में मधुकाँकरिया

के पास धर्म और समाज को समझने की बेहद संवेदनाशील दृष्टि है। वे धर्म और समाज की सन्धियों में छिपे झींगुरों एवं तिलचट्टों को प्रकाश में लाती है। कहने की जरूरत नहीं कि लेखिका ने दुस्साहस के साथ अपने समय के धर्माचरण का पर्दाफाश किया है।

इस उपन्यास में काम संबंधों का चित्रण भी करते हुए लेखिका स्वार्थ, वासना, नैतिक मानमूल्यों में आया हुआ पतन, सम्बन्धों का विघटन आदि का भी बहुत ही सूक्ष्मता से चित्रण करती है।

साध्वी दिव्यप्रभा और विजयेन्द्र मुनि दोनों अपने सन्यासी जीवन में एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हुए प्यार के बंधन में बंध जाते है। इसके लिए उनको कुछ क्षण ही लगे। उनको लगा कि जीने की यह अदम्य ख्वाहिश, एक दूसरे पर मर मिटने की तीव्र भावना-पाप कैसे हो सकती है। यही ब्रहम शक्ति है यही लोहे की धार है। चाक की गति है। पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति है। इसके बिना जीवन निष्प्राण है दैवी, जैसे अभी तक हमारा जीवन था। उन्हें लगा कि प्यार करने से पहले उनका जीवन सुलगता हुआ रेगिस्तान था, सन्यासी जीवन की बदरंग दुनिया में गुलाब ही गुलाब खिल उठते है। विजयेन्द्र मुनि स्वीकार करते हैं कि नहीं जानता देवी कि मोक्ष सत्य है या नहीं पर तुम सत्य हो। तुम्हारा सौन्दर्य, उद्याम यैवन का आवेग, कामनाओं के ये फूल, यह परस्परता, ऊर्जास्वित करता यह मिलन....यही सत्य है, जिसने एक झटके में सन्यास और इन्द्रिय निग्रह के झूठे साम्राज्य की ढहा दिया (184)..... आज जान सका हूँ कि बिना स्त्री को जाने जीवन को सम्पूर्णता में नहीं जाना जा सकता है।

स्वप्न सौन्दर्य और अभिलाषाओं के अन्तहीन प्रांगण में विजयेन्द्र मुनि को पाने के लिए अब वह निकल पड़ती है तब मुनि के गुरूभाई अभयमुनि की वासना के फड़फड़ाते पंछी द्वारा नोंच डाली जाती है। गुरूभाई ने जो संख भोगा है उसे पाने के लिए वह पशु से भी बदतर हो जाते है और कहते है देवी बस आज रात तुम मेरी कामाग्नि को शान्त कर दो उद्दम वेग से बहती इस बेकाबू लहर को थाम लो.....साध्वी जीवन से तो तुम वैसे भी स्खलित हो ही चुकी हो चाहे वह विजेन्द्र मुनि की गर्माती बेकाबू देह हो, चाहे मेरी

अपने मित्र की प्रियतमा को पाने के लिए इस गुरूभाई ने जो धोखा उसे हदया है वह साध के चरित्र पर कलंक तो है ही साथ साथ कामाग्नि से जलने वाले यह साथ सच्चरित्र होने का सदाचार से, सद्विचार से उन्नत जीवन जीने का ढोंग कब तक करते रहेंगे। मान्यताओं एवं मर्यादाओं की कब तक बलि चढ़ाते रहेंगे। समाज का नैतिक उन्नयन करने के बजाए पतन की खाई तक कब तक ले जाएंगे-

छुटकी तो जिससे सच्चा प्यार किया उसे अन्त तक मिल नहीं पायी। तपोवन से कोठ तक का जिल्लत भरा दर्दनाक सफर उसे करना पड़ा कैंसर जैसी भयंकर बीमारी की शिकार हो गयी अनब्याही माँ बन गई। जिस जीवन के दु:खों से बचाकर माँ ने साध्वी बनाया था उन्हीं के आवर्त में आकर अपने आपको दु:खों के विशाल सागर में झोंकती गई,

नई पीढ़ी में आए हुए स्वेच्छाचार साधु, मुनि जीवन से थोड़े ही बचा पाए इस असहाय

ISSN No. : 2347–9612

नारी को यह उपन्यास धर्म, नैतिकता, स्त्री-पुरूष सम्बन्ध, मान्यतायें रूढ़ियों, सामाजिक मान मर्यादाएँ आदि पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य करता है। जीवन मुश्किल लगने पर धर्म का लबादा डालने से जीवन सुखकर नहीं हो सकता। यह दुनिया-खद्दर के नीचे, मुलायम सिल्क पहनने वालों की दुनिया है, यह सेज पर संस्कृत बोलने वालों की दुनिया है यहाँ साधु के लबादे में उसका चित्तकबरापन भी ढक जाता है। जैन जातक कथा, आत्मसाधना अमृत वचन आदि पुस्तकों के साथ रजनीश की सम्भोग से समाधिक छुपाकर रखने वाली यह साधुओं की जिंदगी है। हैरतो और वैष्णव धर्म के जिस कर्मकाण्ड के विरूद्ध जैन धर्म अस्तित्व में आया था, आज वे ही सारे कर्मकाण्ड लेकर यह धर्म प्रस्तुत हो गया है तो इस धर्म की छाया में मनुष्य जीवन कब तक सुरक्षित हो सकता है इसी पर प्रश्न चिह्न उठाने वाला यह उपन्यास है। यह धर्म की आड़ में पल रही अपसंस्कृति से मनुष्य कब तक संरक्षित है?

❖❖